



गुप्तकालीन कला एवं स्थापत्य कला एक : विहंगम दृष्टिपात

डॉ संतोष कुमारी¹

¹ व्याख्याता (पे. बैन्ड IV), इतिहास, श्री.बी.आर.मिर्धा राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नागौर, राजस्थान।

ABSTRACT

भारतीय संस्कृति में गुप्त काल एक ऐसा समय है जब साहित्य कला और विज्ञान और भाषा के क्षेत्र में अत्यधिक विकास हुआ। भारतीय भाषाओं में संस्कृत का प्रयोग शिलालेख, स्तंभ लेख, दानपात्र लेख आदि सभी में किया जाता था। फलतः संस्कृत साहित्य को भारत का राष्ट्र गौरव बनने का श्रेय प्राप्त हुआ। विभिन्न धर्म एवं दर्शनों ने इस समय अपनी जड़ों को और अधिक विस्तार प्रदान किया। यह काल भारतीय इतिहास का विशिष्ट काल था जब कला और संस्कृति ने अपने पूर्ण रूप की प्राप्ति की। स्थापत्य कला, चित्रकला आदि विभिन्न प्रकार की कलाओं को इस समय में अनेक प्रकार से विकास प्राप्त हुआ। यही वह समय था जब चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के दरबार में भी नवतंत्रों को संरक्षण प्रदान किया गया था। जिसमें सर्वाधिक प्रतिभावान नक्षत्र महाकवि कालिदास ही हुए हैं, जो कि भारतीय ही नहीं संपूर्ण विश्व की अनुपम विभूति हैं। इस काल में विभिन्न धर्माचार्यों और प्रवर्तकों ने परस्पर वाद विवाद के द्वारा गहन चिंतन मनन के द्वारा नवीन तर्कों को प्रस्तुत करते हुए अपने गूढ़ विचारों की प्रस्तुति की जिस कारण विभिन्न धर्मों को विकास प्राप्त हुआ। इस काल में विज्ञान के क्षेत्र में भी विशेष प्रगति हुई। खगोल विद्या, गणित, चिकित्सा शास्त्र आदि विभिन्न क्षेत्रों में नवीन अन्वेषण हुए। कुल मिलाकर गुप्त काल विभिन्न प्रकार की कलाओं के विकास का काल रहा है जिस पर विहंगम दृष्टिपात अपेक्षणीय है।

Key words: गुप्त काल, कला, संस्कृति, विकास, स्थापत्यकला, चित्रकला, मूर्तिकला आदि।

ऐतिहासिक स्रोतों के आधार पर यदि विहंगम दृष्टिपात किया जाए तो गुप्तकालीन कला सर्वाधिक संपन्न और समृद्ध दृष्टिगोचर होती है। हालांकि यह प्राचीन काल से ही चली आ रही है, जो इसके विकास की प्रवाहमान श्रृंखला है। इस काल में कला और राजनीतिक परिवर्तनों से प्रभावित होते हुए अनेक राजनीतिक उथल-पुथल से प्रभावित होकर भी सौंदर्य और गरिमा को प्राप्त होती चली गयी। हालांकि गुप्त काल तक जो कला का विकास हुआ उसमें बौद्ध धर्म का सहयोग अधिक रहा। गुप्त काल के वैदिक क्रियाकलापों ने, बौद्ध एवं जैन धर्म के साथ ब्राह्मण धर्म के विभिन्न संप्रदायों जैसे— शैव, शाक्त, वैष्णव आदि ने भी उसे प्रभावित किया। राजवंशों से क्षेत्रीय प्रवृत्तियों को विभिन्न प्रकार की शैलियों के रूप में आश्रय प्राप्त हुआ। अतः स्पष्ट है कि इस समय धर्म एवं कला का मंजुल समन्वय अनेक प्रकार से स्थापित हुआ जो विदेशियों के प्रभाव से रहित था। इस काल में अनेक मूर्तिकला, चित्रकला, स्थापत्य कला का विकास अपनी पूर्णता के साथ हुआ अतः यह समय काल की प्रौढ़ता का स्वर्णिम युग जाना गया।

मूर्तिकला :-

भारतीय सांस्कृतिक जीवन के विकास काल के प्रारंभ में ही मूर्तिकला की उद्भावना मनुष्य के मस्तिष्क में उभर आई थी लेकिन इसका वास्तविक रूप मौर्य काल में और उसके बाद देखने में आता है विभिन्न प्रकार के माध्यमों के द्वारा भारतीय मूर्तिकला की विशेषताएँ अपने स्वतंत्र अस्तित्व के रूप में जानी जाती हैं।

इनको सहजभाव से राज्याश्रित और लोकाश्रित कला का नाम दिया जा सकता है। अशोक के स्तम्भ शीर्ष में अंकित पशु और पाटलिपुत्र से प्राप्त पुरुष - मूर्ति का शिर-विहीन ऊर्ध्वांग तथा चामरधारिणी (दीदारगंज यक्षी) की मूर्ति आदि इस काल के राज्याश्रित कला के नमूने हैं। लोकाश्रित कला के नमूने यक्ष और यक्षियों की मूर्तियों के रूप में उत्तर भारत के अनेक स्थानों से प्राप्त हुए हैं। ये सभी बिना किसी अवलम्ब के खड़ी मूर्तियाँ हैं। इनकी नवकाशी चतुर्दिकदर्शी रूप में हुई है अर्थात् वे आगे-पीछे सभी ओर से देखी जा सकती हैं। किन्तु निर्माताओं का उद्देश्य इसके विपरीत है उनके अनुसार ये सामने से ही देखी जायें, अतः इन मूर्तियों के बनावट में पृष्ठ भाग की अपेक्षा अग्रभाग की ओर ही अधिक ध्यान दिया गया है। ये सभी महाकाय मूर्तियाँ हैं अर्थात् वे शारीरिक शक्ति की असाधारण अभिव्यक्ति करती हुई काफी लम्बी और स्थूलकाय हैं। यक्ष मूर्तियों की इसी परम्परा में आगे चल कर कुषाणकाल में बोधिसत्वों की महाकाय चतुर्दिकदर्शी मूर्तियों का प्रादुर्भाव हुआ।

कुषाण काल में ईसा की आरंभिक शताब्दियों में मूर्तिकला का प्रचार और प्रचार गंधार और मथुरा को केंद्र बनाकर दो स्वतंत्र धाराओं के रूप में परिलक्षित होता है। गंधार शैली की मूर्तियाँ जहाँ स्वातघाटी में उपलब्ध होने वाले काहे रंग की स्लेटी पत्थर में उकेरी गई है, वहीं मथुरा शैली की मूर्तियाँ का अंकन आसपास की रूपवास, सीकरी, कर्रा आदि स्थानों से प्राप्त होने

वाले लाल रंग के सफेद चित्तीदार बलुहे के पाषाण में की गई हैं। इस प्रकार दोनों ही केन्द्रों की मूर्तियाँ अपने पत्थरों से ही दूर से पहचानी जा सकती हैं। गंधार शैली की मूर्तियाँ का विषय बौद्ध-धर्म से सम्बन्धित है उनमें बुद्ध, बोधिसत्व और उनसे सम्बन्धित वृत्तों और कहानियों का अंकन हुआ है। इस शैली में बनी कदाचित् ही कोई मूर्ति जैन और बौद्ध, तीनों ही धर्मों पर समान रूप से छायी हुई है। गंधार शैली की मूर्तियों का विषय और भाव-भूमि भारतीय अवश्य है पर उसके अंकन की विधा यवन और रोमक कला से अत्यधिक प्रभावित है।

भारतीय कला में जो कुछ भी उत्कृष्ट है वह सब गुप्तकालीन है अतः कुमारस्वामी ने बिना संकोच दक्षिणी-पश्चिमी आरम्भिक चालुक्य कला को भी गुप्त कला के अन्दर समेट लिया है।

मथुरा की मूर्ति कलाओं की ओर अगर गंभीरता से दृष्टिपात किया जाए तो कुमारगुप्त के काल तक कुषाण मूर्ति शैली की परंपरा मथुरा में अक्षुण्ण बनी हुई थी और उस समय तक बुध और जिन की मूर्तियाँ उसी शैली में बनती रही किसी नई शैली का विकास तब तक नहीं हो पाया था। विदिशा से राम गुप्तकालीन अभिलिखित जिन की जो मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं वह भी उपयुक्त दोनों मूर्तियों की ही परंपरा में हैं उनका भी निर्माण कुषाण शैली में ही हुआ है उनमें और मथुरा की कुषाण कालीन जिन मूर्तियों में इतनी समानता है कि यदि वे अभिलेख युक्त न हो तो किसी भी कला मर्मज्ञ के लिए कल्पना करना कदापि संभव नहीं होगा कि, उनका मूर्तन गुप्त काल के किस समय में हुआ है।

मथुरा की गुप्तकालीन मूर्तियों की दो धाराएँ परिलक्षित होती हैं। पूर्ववर्ती गुप्तकालीन मूर्तियाँ (प्रथम कुमारगुप्त के काल और उससे पूर्व की मूर्तियाँ) कुषाण शैली की अनुगामिनी हैं। इन्हें अभिलेखिक प्रमाण के अभाव में कुषाण काल की मूर्तियों से किसी प्रकार अलग नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार उत्तरवर्ती गुप्तकाल (प्रथम कुमारगुप्त और उनके बाद) की मूर्तियाँ काशिका (सारनाथ) शैली की अनुगामिनी हैं। जिसके अभिलेखीकरण से कनिंघम की सूचना के अनुरूप उच्चित्रण किया गया है।

गुप्तकालीन काशिका कला-शैली पूर्व में बिहार, बंगाल और आसाम तक फैली हुई थी मूर्ति प्रमाणों के अनुसार मौर्यकाल की जो कला सामग्री इस प्रदेश में प्राप्त हैं, वे सब चुनार पत्थर की हैं। कुषाणकाल में जो मूर्तियाँ मथुरा से निर्यात होती रहीं, वह यहाँ प्राप्त मूर्तियों के लाल पत्थर में बने होने से ही स्पष्ट है उनकी शैली कुषाणकालीन है।

इनकी संख्या अत्यल्प होने से उनका मगध में मूर्तित होना भी निश्चित नहीं होता, अनुमान है कि इनका निर्यात काशी से हुआ होगा। इनके गुप्तकाल में मूर्तित होने की सम्भावना राजगृह में प्राप्त जैन मूर्तियों से होता है। जिन्हें रामप्रसाद चन्दा ने वैभार पर्वत पर एक ध्वस्त मन्दिर की दीवारों पर कुछ जिन मूर्तियों को देखा। उन्होंने कुछ मूर्तियों के अध्ययन के द्वारा यह पाया कि

यह मूर्तियाँ पूर्णरूपेण गुप्तकालीन कृति नहीं कहीं जा सकती, लेकिन गुप्तकालीन होने का अनुमान किया गया है। कुछ मूर्तियों का मूर्तन अत्यधिक नृतिपूर्ण, भद्रा और अशोभनीय है। बाहों के सामने के हिस्से को ऊपर वाले हिस्से के साथ बगल से जोड़ा गया है। पैरों की बनावट भी अत्यधिक भद्दी है। उनके अन्वेषण का आधार ध्वस्त मंदिर की दूसरी दीवार में लगे हुए काले पत्थर की मूर्ति भी है। जिस पर गुप्त लिपि में एक अभिलेख भी लिखा गया है जो अत्यधिक विकृत अवस्था में है। रामप्रसाद उनके गुप्तकाल की होने का अनुमान करते हैं क्योंकि उनके आधार पर तीन मूर्तियों के भी गुप्तकाल का होने का अनुमान है। रामप्रसाद चंदा ने उन मूर्तियों का द्वितीय चंद्रगुप्त के काल के होने का अनुमान किया है। वह अभिलेख युक्त मूर्ति पद्मासन पर स्थित हैं और आसन के नीचे बीच में चक्र बने हुए हैं चक्र पर एक पुरुष खड़ा है। चंदा ने चक्र के भीतर खड़ी आकृति को राजकुमार अरिष्टनेमी नेमिनाथ की मूर्ति के रूप में अनुमानित किया है। लेकिन उमाकांत शाह के अनुसार यह चक्र पुरुष मात्र हैं। चक्र पुरुष गुप्तकालीन कल्पना कही जा सकती है अतः राजगृह से प्राप्त मूर्तियाँ इस बात का संकेत स्पष्ट रूप से देती हुई प्रतीत होती है कि द्वितीय चंद्रगुप्त के काल तक मगध में गुप्तकालीन कहे जाने वाली शैली का विकास नहीं हुआ था। राजगृह की इन मूर्तियों के अतिरिक्त मगध के अन्य क्षेत्र से ऐसी कोई कला सामग्री प्राप्त नहीं होती जो पूर्ववर्ती गुप्त काल की कही जा सकती हो।

गुप्तकालीन कलाकारों ने पूर्वकालिक कला रूढ़ियों से हट कर मानव आकृतियों का प्राकृतिक और सन्तुलित रूप में मूर्तन भी किया है। - उनकी रचनाओं में यौवन अपने चरम रूप में प्रस्फुटित हुआ है। उन्हें जीवन की अन्तर्भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति यौवन में ही दिखायी पड़ी है। उनकी कला में शरीर की मांसलता की बाह्य चिकनाहट ही नहीं बरन उनका अन्तर भी प्रकाशमान होता दिखायी पड़ता है। उनकी कला में सूक्ष्म आध्यात्मिकता भी प्रवाहित होती जान पड़ती है। संक्षेप में जीवन के अंग-अंग में रसी रसात्मक कला अपना निखार लिये विहसती दिखायी पड़ती है।

स्वर्णकार कला-

भारत का सुवर्णकार कला, मूलतः अभी तक प्राचीनकालीन ढंग पर ही चलती चली आ रही थी। आज की तरह ही प्राचीन सुवर्णकार भट्टी भाषी और फेंकनी का प्रयोग कर आग प्रज्वलित करते थे। जिस धातु का उन्हें उपयोग करना होता उसे वे धरिया में रख कर गलते थे। आभूषण बनाने में वे निहाई. हथौड़ी विभिन्न प्रकार के ठप्पों और साँचों का प्रयोग करते थे। निहाई पर धातु को रख कर हथौड़ी से पीट कर पतला करते और फिर ठप्पों अथवा साँचों के माध्यम से उसे रूपायित करते। छेनी. रेती कतरनी आदि उनके अन्य छोटे-मोटे औजार थे। पुरातात्विक उत्खनन में सुवर्णकारों के इन औजारों में साँचे और टप्पे प्राप्त हुए हैं।

आभूषणों की तरह ही सिक्कों और मुहरों के बनाने की कला का भी सम्बन्ध सुवर्णकारों से रहा है। वे लोग सिक्के और मुहरों के बनाने के लिए धातु अथवा अन्य माध्यम में आकृतियों को महीन औजारों से उकेरते थे। उनकी यह कला उन दिनों चरम उत्कर्ष पर थी।

कुम्भकार कला-गुप्तकालीन कुम्भकार भी कला - भावना से उत्प्रेरित थे। उनके गढ़े भाण्डों में मूर्तिकला ही एक दूसरा रूप लेकर मुखरित हुई है। उन्होंने अपने बनाये मृणभाण्डों को कमलदल, पुष्प, लता आदि रूपों, गोल और चौकोर ज्यामितिक आकारों, लहरिया चक्र नन्दिपद आदि अनेक चिह्नों से सुरुचिपूर्ण ढंग से अलंकृत किया था।

चित्रकला

चित्र मानव की आन्तरिक अभिव्यक्ति का एक माध्यम है। संसार में चित्रकला के विकास की खोज प्रागैतिहासिक गुहा चित्रों में हुई है और चित्रकला के विकासक्रम को व्यवस्थित रूप देने का प्रयास किया गया है। किन्तु इस प्रकार की भारतीय चित्रकला की ऐतिहासिक कड़ियों को अभी व्यवस्थित रूप से जोड़ा जाना सम्भव नहीं हो पाया है।

भारतीय चित्रकला के इतिहास की आज जो व्यवस्थित कड़ी हमें उपलब्ध है, वह 'अजिण्ठा' के गुफाओं से प्राप्त होती है। वहीं के कुछ गुफाओं में ऐसे निति-चित्रों के अवशेष मिले हैं, जिनका समय ईसा पूर्व की दूसरी शती के आस-पास अनुमान किया जाता है और वे चित्रकला के अत्यन्त विकसित परम्परा के प्रतीक हैं।

गुप्त काल में चित्रकला ने पूर्ण विकसित वैभव प्राप्त कर लिया था। तत्कालीन

तकनीकी और ललित, दोनों प्रकार के साहित्य से ज्ञात होता है कि उन दिनों लोग चित्रकला को केवल शौकिया ही नहीं सीखते थे, वरन् नागरिक समाज के उच्च वर्ग और राजमहलों की स्त्रियों और राजकुमारियों के बीच चित्रकला का ज्ञान एक अनिवार्य सामाजिक गुण माना जाता था और सामान्य जन में भी उसका प्रचार-प्रसार काफी था। जिसका उल्लेख साहित्य में भी यत्र तत्र मिलता है।

स्थापत्य कला :-

इस काल की स्थापत्यकला दो रूपों में प्राप्त होती है। धार्मिक एवं गैर धार्मिक। गैर धार्मिक स्थापत्य का विकास उतना नहीं हुआ जितना कि धार्मिक का, क्योंकि ललित कला का संबंध धर्म से अधिक है। धार्मिक स्थापत्य में मंदिर, चैत्य और स्तूप सभी आते हैं। यह काल चैत्य एवं स्तूपों की प्रधानता का काल नहीं, मंदिरों की प्रधानता का है समय रहा है अतः स्थापत्यकला मंदिरों में ही देखने को मिलती है। गुप्तकालीन मंदिर अधिकांशतः दीवारों से गिरे बड़े कमरे हैं जिनमें चारों ओर कलाकृतियाँ उकेरी गई हैं।

मुकुन्द-दर्रा मन्दिर

कोटा (राजस्थान) स्थित एक पहाड़ी दर्रे के भीतर जो मुकुन्द दर्रा - के नाम से ख्यात है और प्राचीनकाल में मालवा और उत्तर भारत के यातायात मार्ग को जोड़ता था. एक छोटा-सा सपाट छत का स्तम्भों पर खड़ा मण्डप है। इस मण्डप का निर्माण 44 फुट x 74 फुट के चबूतरे के ऊपर हुआ है। उस पर जाने के लिए सामने की ओर दायीं किनारे पर सीढ़ियाँ हैं। गर्भगृह अथवा मण्डप का निर्माण चार चौपहल खम्भों पर हुआ है जो साढ़े पाँच फुट के अन्तर पर खड़े किये गये हैं। मन्दिर के चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ के स्तम्भों के अर्द्ध-स्तम्भों से दो फुट दो इंच के अन्तर पर तीन ओर सोलह इंच ऊँची पत्थर की चुनी हुई चहारदीवारी है। इससे 18 फुट हट कर पूब की ओर चार स्तम्भों पर खड़ा एक छोटा मण्डप था¹⁰।

उदयपुर का मन्दिर

विदिशा से 34 मील उत्तर उदयपुर में साँची के मन्दिर के अनुरूप ही एक छोटा-सा मन्दिर है। इसमें भी छोटा-सा गर्भगृह है जो समान लम्बाई-चौड़ाई का है; उसकी भी छत सपाट है। सामने मण्डप अथवा बरामदा है और अलंकरण के नाम पर बाहर तीन पतली पंक्ति हैं जिन पर ईंटें कटी हुई हैं। किन्तु इसमें छत पर पानी निकलने के लिए साँची के मन्दिर की तरह कोई पनाली नहीं है¹¹।

देवगढ़ का विष्णु मन्दिर

झाँसी जिले में बेतवा नदी के तट पर स्थित देवगढ़ में एक ध्वस्त विष्णु मन्दिर है जो साढ़े पैतालिस फुट वर्गाकार लगभग पाँच फुट ऊँचे चबूतरे (जगतीपीठ) के बीच में बना है¹²। चबूतरे के चारों ओर साढ़े पन्द्रह फुट लम्बी सीढ़ियाँ हैं। राखालदास बनर्जी के अनुसार गर्भगृह के चारों ओर निश्चित ही ढका हुआ प्रदक्षिण पथ रहा होगा¹³। लेकिन अन्य लोग इस विषय पर मौन रहते हैं। गर्भगृह के चारों ओर की दीवारें अत्यधिक स्थूल हैं। अनुमान के अनुसार वह 3 फुट 7 इंच मोटी है। पश्चिम की ओर गर्भगृह में अत्यधिक अलंकृत द्वार बना हुआ है। बाकी तीन ओर की दीवारों के बीच में रथिका स्थापित है। जिसके अंतर्गत जगन्मोक्ष, नरनारायण और अनंतशायी श्री हरि विष्णु का चित्र अंकित है। इन रथिका और द्वार की रक्षा के लिए कर्निचम¹⁴, बनर्जी¹⁵, पर्सी ब्राउन¹⁶ आदि के मतानुसार चार छोटे-छोटे मंडप बने हुए थे। किंतु माधोस्वरूप वत्स इस मत से अभी भी सहमत नहीं है। उनका कहना है कि मंडप न होकर ऊपर से आगे की ओर निकला एक छज्जा मात्र बना हुआ था¹⁷। अब दोनों में से क्या था यह कहना अत्यधिक कठिन है।

इसी प्रकार से भीतर गांव का ईटों का मंदिर, मुंडेश्वरी मंदिर, बोधगया का महाबोधि मंदिर, नालंदा का मंदिर, कुशीनगर का मंदिर, पूर्वी उत्तर प्रदेश में स्थित कहांव का मंदिर, अहिछत्र का शिव मंदिर, स्वालियर मध्य प्रदेश का पद्मावती पवाया मंदिर आदि सभी स्थापत्य कला के अद्भुत नमूने जिन्हें देखकर व्यक्ति मात्र का हृदय कला से तो हो जाता है इन मंदिरों की कलाकारिता, स्थापत्य कला इतनी प्रभावपूर्ण है कि अपनी विचित्रता से हर किसी को अपनी ओर आकर्षित करने में आज भी सक्षम हैं। गुप्तकालीन मंदिरों के अलंकरण का महत्वपूर्ण हिस्सा स्तंभ कला भी है जो कि मंदिरों के अलंकरण को और अधिक बढ़ा देती है।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि गुप्त काल कला और सौंदर्य का काल रहा है। जिस समय विभिन्न प्रकार की कलाएं समाज के मध्य उभर कर आई हैं और जिन्होंने तीव्रता के साथ विकास को भी प्राप्त किया है। गुप्तकालीन स्थापत्य कला, चित्रकला, मूर्तिकला अपने आप में विशिष्ट है और

विविध प्रकार की अद्भुत शक्ति को भी अपने अंदर समाहित किए हुए हैं। उस समय के व्यक्तियों की कलाकारिता ने युग युगांतर तक स्वयं को जीवित रखने की शक्ति हासिल की है।

REFERENCES

- [1] हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, पृ० 75-76
- [2] ओरियण्टल कॉन्फ्रेंस, जादवपुर अधिवेशन के इतिहास विभाग का अध्यक्षीय भाषण, पृ० 10
- [3] कनिंगहम, आयोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, 11. पृ० 17, फलक 6
- [4] आयोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, एन्युएल रिपोर्ट, 1925-26, पृ० 125-26
- [5] स्टडीज इन जैन आर्ट, पृ० 14
- [6] जर्नल, बिहारी रिसर्च सोसाइटी, पटना, 54, 1968, पृ० 242
- [7] ज्वेलरी मोल्डस इन एन्शियण्ट इण्डिया बुलेटिन ऑफ प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम, 8. पृ० 7-17
- [8] जिसे आज हम अजन्ता कहते हैं, उसका मूल नाम अजिण्टा है। यहाँ के आस-पास के निवासी इसे इसी नाम से जानते हैं।
- [9] मालविकामित्रम्, पृ० 264, रघवंश, 14/25
- [10] देवाला मित्रा, शंकरमठ एट कुण्डा, जर्नल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, 8 (चौथी सी०). पृ० 79-81
- [11] हरमन गोयत्स, इम्पीरियल रोम एण्ड जेनेसिस ऑफ क्लासिकल इण्डियन आर्ट, ईस्ट एण्ड वेस्ट, 10, पृ० 153
- [12] कनिंगहम, आयोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, 10 पृ० 105
- [13] द एज ऑफ इम्पीरियल गुप्ताज, पृ० 145-47
- [14] कनिंगहम, आयोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, 10. पृ० 105
- [15] द एज ऑफ द इम्पीरियल गुप्ताज, पृ० 146
- [16] इण्डियन आर्किटेक्चर, पृ० 50
- [17] गुप्त टेम्पल एट देवगण, पृ० 6

-
- [1] मालविकामित्रम्
 - [2] अभिज्ञानशाकुंतलम्
 - [3] ज्वेलरी मोल्डस इन एन्शियण्ट इंडिया, बुलेटिन ऑफ प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम
 - [4] आर्ट ऑफ इंडिया एंड पाकिस्तान
 - [5] अली हिस्ट्री ऑफ इंडिया
 - [6] स्टडीज इन जैन आर्ट
 - [7] हिस्ट्री ऑफ इंडियन एंड इंडोनेशियन आर्ट
 - [8] कनिंगहम आयोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट
 - [9] ओरिएण्टल कॉन्फ्रेंस, जादवपुर अधिवेशन के इतिहास विभाग का अध्यक्षीय भाषण
 - [10] बृहत्संहिता
 - [11] एन्शियण्ट इंडिया
 - [12] द एज ऑफ इम्पीरियल गुप्ताज
 - [13] इंडियन आर्किटेक्चर
 - [14] गुप्त टेम्पल एट देवगढ़